दूसरी दुनिया

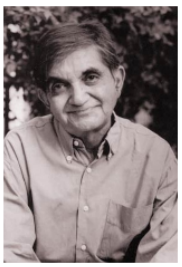

हिन्दी ADDA

निर्मल वर्मा

दूसरी दुनिया

https://www.hindiadda.com/dusari-duniya/

बहुत पहले मैं एक लड़की को जानता था। वह दिन-भर पार्क में खेलती थी। उस पार्क में बहुत-से पेड़ थे, जिनमें मैं बहुत कम को पहचानता था। मैं सारा दिन लायब्रेरी में रहता था और जब शाम को लौटता था, तो वह उन पेड़ों के बीच बैठी दिखाई देती थी। बहुत दिनों तक हम एक-दूसरे से नहीं बोले। मैं लंदन के उस इलाके में सिर्फ कुछ दिनों के लिए ठहरा था। उन दिनों मैं एक जगह से दूसरी जगह बदलता रहता था, सस्ती जगह की तलाश में।

वे काफी गरीबी के दिन थे।

वह लड़की भी काफी गरीब रही होगी, यह मैं आज सोचता हूँ। वह एक आधा-उधड़ा स्वेटर पहने रहती, सिर पर कत्थई रंग का टोप, जिसके दोनों तरफ उसके बाल निकले रहते। कान हमेशा लाल रहते और नाक का ऊपरी सिरा भी - क्योंकि वे अक्तूबर के अंतिम दिन थे - सर्दियाँ शुरू होने से पहले के दिन और ये शुरू के दिन कभी-कभी असली सर्दियों से भी ज्यादा क्रूर होते थे।

सच कहूँ तो ठंड से बचने के लिए ही मैं लायब्रेरी आता था। उन दिनों मेरा कमरा बर्फ हो जाता था। रात को सोने से पहले मैं अपने सब स्वेटर और जुराबें पहन लेता था, रजाई पर अपने कोट और ओवरकोट जमा कर लेता था - लेकिन ठंड फिर भी नहीं जाती थी। यह नहीं कि कमरे में हीटर नहीं था, किंतु उसे जलाने के लिए उसके भीतर एक शिलिंग डालना पड़ता था। पहली रात जब मैं उस कमरे में सोया था, तो रात-भर उस हीटर को पैसे खिलाता रहा - हर आधा घंटे बाद उसकी जठराग्नि शांत करनी पड़ती थी। दूसरे दिन, मेरे पास नाश्ते के पैसे भी नहीं बचे थे। उसके बाद मैंने हीटर को अलग छोड़ दिया। मैं रात-भर ठंड से काँपता रहता, लेकिन यह तसल्ली रहती कि वह भी भूखा पड़ा है। वह मेज पर ठंडा पड़ा रहता - मैं बिस्तर पर - और इस तरह हम दोनों के बीच शीत-युद्ध जारी रहता।

सुबह होते ही मैं जल्दी-से-जल्दी लायब्रेरी चला आता। पता नहीं, कितने लोग मेरी तरह वहाँ आते थे - लायब्रेरी खुलने से पहले ही दरवाजे पर लाइन बना कर खड़े हो जाते थे। उनमें से ज्यादातर बूढ़े लोग होते थे जिन्हें पेंशन बहुत कम मिलती थी, किंतु सर्दी सबसे ज्यादा लगती थी। मेजों पर एक-दो किताबें खोल कर वे बैठ जाते। कुछ ही देर बाद मैं देखता, मेरे दाएँ-बाएँ सब लोग सो रहे हैं। कोई उन्हें टोकता नहीं था। एक-आध घंटे बाद लायब्रेरी का कोई कर्मचारी वहाँ चक्कर लगाने आ जाता, खुली किताबों को बंद कर देता और उन लोगों को धीरे से हिला देता, जिनके खर्राटे दूसरों की नींद या पढ़ाई में खलल डालने लगे हों।

ऐसी ही एक ऊँघती दोपहर में मैंने उस लड़की को देखा था - लायब्रेरी की लंबी खिड़की से। उसने अपना बस्ता एक बेंच पर रख दिया था और खुद पेड़ों के पीछे छिप गई थी। वह कोई धूप का दिन न था, इसलिए मुझे कुछ हैरानी हुई थी कि इतनी ठंड में वह लड़की बाहर खेल रही है। वह बिल्कुल अकेली थी। बाकी बेंचें खाली पड़ी थीं। और उस दिन पहली बार मुझे यह जानने की तीव्र उत्सुकता हुई थी कि वे कौन-से खेल हैं, जिन्हें कुछ बच्चे अकेले में खेलते हैं।

दोपहर होते ही वह पार्क में आती, बेंच पर अपना बैग रख देती और फिर पेड़ों के पीछे भाग जाती। मैं कभी-कभी किताब से सिर उठा कर उसकी ओर देख लेता। पाँच बजने पर सरकारी अस्पताल का गजर सुनाई देता। घंटे बजते ही, वह लड़की जहाँ भी होती, दौड़ते हुए अपनी बेंच पर आ बैठती। वह बस्ते को गोद में रख कर चुपचाप बैठी रहती, जब तक दूसरी तरफ से एक महिला न दिखाई दे जाती। मैं कभी उन महिला का चेहरा ठीक से न देख सका। वह हमेशा नर्स की सफेद पोशाक में आती थीं। और इससे पहले कि बेंच तक पहुँच पातीं - वह लड़की अपना धीरज खो कर भागने लगती और उन्हें बीच में ही रोक लेती। वे दोनों गेट की तरफ मुड़ जातीं और मैं उन्हें उस समय तक देखता रहता जब तक वे आँखों से ओझल न हो जातीं।

मैं यह सब देखता था, हिचकॉक के हीरो की तरह, खिड़की से बाहर, जहाँ यह पैंटोमिम रोज दुहराया जाता था। यह सिलसिला शायद सर्दियों तक चलता रहता, यदि एक दिन अचानक मौसम ने करवट न ली होती।

एक रात सोते हुए मुझे सहसा अपनी रजाई और उस पर रखे हुए कोट बोझ जान पड़े। मेरी देह पसीने से लथपथ थी, जैसे बहुत दिनों बाद बुखार से उठ रहा हूँ। खिड़की खोल कर बाहर झाँका, तो न धुंध, न कोहरा, लंदन का आकाश नीली मखमली डिबिया-सा खुला था, जिसमें किसी ने ढेर-से तारे भर दिए थे। मुझे लगा, जैसे यह गर्मियों की रात है और मैं विदेश में न हो कर अपने घर की छत पर लेटा हूँ।

अगले दिन खुल कर धूप निकली थी, मैं अधिक देर तक लायब्रेरी में नहीं बैठ सका। दोपहर होते ही मैं बाहर निकल पड़ा और घूमता हुआ उस रेस्तराँ में चला आया, जहाँ मैं रोज खाना खाने जाया करता था। वह एक सस्ता यहूदी रेस्तराँ था। वहाँ सिर्फ डेढ़ शिलिंग में कोशर गोश्त, दो रोटियाँ और बियर का एक छोटा गिलास मिल जाता था। रेस्तराँ की यहूदी मालकिन, जो युद्ध से पहले लिथूनिया से आई थीं, एक ऊँचे स्टूल पर बैठी रहतीं। काउंटर पर एक कैश-बॉक्स रखा रहता और उसके नीचे एक सफेद सियामी बिल्ली ग्राहकों को घूरती रहती। मुझे शायद वह थोड़ा-बहुत पहचानने लगी

थी, क्योंकि जितनी देर मैं खाता रहता, उतनी देर वह अपनी हरी आँखों से मेरी तरफ टुकुर-टुकुर ताकती रहती। गरीबी और ठंड और अकेलेपन के दिनों में बिल्ली का सहारा भी बहुत होता है, यह मैं उन दिनों सोचा करता था। मैं यह भी सोचता था कि किसी दिन मैं भी ऐसा ही हिंदुस्तानी रेस्तराँ खोलूँगा और एक-साथ तीन बिल्लियाँ पालूँगा।

रेस्तराँ से बाहर आया, तो दोबारा लायब्रेरी जाने की इच्छा मर गई। लंबी मुद्दत बाद उस दिन घर से चिट्ठियाँ और अखबार आए थे। मैं उन्हें पार्क की खुली धूप में पढ़ना चाहता था। मुझे हल्का-सा आश्चर्य हुआ, जब मेरी नजर पार्क के फूलों पर गई। वे बहुत छोटे फूल थे, जो घास के बीच अपना सिर उठा कर खड़े थे। इन्हीं फूलों के बारे में शायद जीसस ने कहा था, लिलीज ऑफ द फील्ड, ऐसे फूल, जो आनेवाले दिनों के बारे में नहीं सोचते।

वे गुजरी हुई गर्मियों की याद दिलाते थे।

मैं घास के बीच उन फूलों पर चलने लगा।

बहुत अच्छा लगा। आनेवाले दिनों की दुश्चिंताएँ झरने लगीं। मैं हल्का-सा हो गया। मैंने अपने जूते उतार दिए और घास पर नंगे पाँव चलने लगा। मैं बेंच के पास पहुँचा ही था कि मुझे अपने पीछे एक चीख सुनाई दी। कोई तेजी से भागता हुआ मेरी तरफ आ रहा था। पीछे मुड़ कर देखा, तो वही लड़की दिखाई दी। वह पेड़ों से निकल कर बाहर आई और मेरा रास्ता रोक कर खड़ी हो गई।

'यू आर कॉट,' उसने हँसते हुए कहा, 'अब आप जा नहीं सकते।'

मैं समझा नहीं। जहाँ खड़ा था, वहीं खड़ा रहा।

'आप पकड़े गए...' उसने दोबारा कहा, 'आप मेरी जमीन पर खड़े हैं।'

मैंने चारों तरफ देखा, घास पर फूल थे, किनारे पर खाली बेंचें थीं, बीच में तीन एवरग्रीन पेड़ और एक मोटे तनेवाला ओक खड़ा था। उसकी जमीन कहीं दिखाई न दी।

'मुझे मालूम नहीं था,' मैंने कहा और मुड़ कर वापस जाने लगा।

'नहीं, नहीं... आप जा नहीं सकते,' बच्ची एकदम मेरे सामने आ कर खड़ी हो गई। उसकी आँखें चमक रही थीं, 'वे आपको जाने नहीं देंगे।'

'कौन नहीं जाने देगा?' मैंने पूछा।

उसने पेड़ों की तरफ इशारा किया, जो अब सचमुच सिपाही-से दिखाई दे रहे थे, लंबे हट्टे-कट्टे पहरेदार। मैं बिना जाने उनके अदृश्य फंदे में चला आया था।

कुछ देर तक हम चुपचाप आमने-सामने खड़े रहे। उसकी आँखें बराबर मुझ पर टिकी थीं - उत्तेजित और सतर्क। जब उसने देखा, मेरा भागने का कोई इरादा नहीं है, तो वह कुछ ढीली पड़ी।

'आप छूटना चाहते हैं?' उसने कहा।

'कैसे?' मैंने उसकी ओर देखा।

'आपको इन्हें खाना देना होगा। ये बहुत दिन से भूखे हैं।' उसने पेड़ों की ओर संकेत किया। वे हवा में सिर हिला रहे थे।

'खाना मेरे पास नहीं है।' मैंने कहा।

'आप चाहें, तो ला सकते हैं।' उसने आशा बँधाई, 'ये सिर्फ फूल-पत्ते खाते हैं।'

मेरे लिए यह मुश्किल नहीं था। वे अक्तूबर के दिन थे और पार्क में फूलों के अलावा ढेरों पत्ते बिखरे रहा करते थे। मैं नीचे झुका ही था कि उसने लपक कर मेरा हाथ रोक लिया।

'नहीं, नहीं - यहाँ से नहीं। यह मेरी जमीन है। आपको वहाँ जाना होगा।' उसने पार्क के फेंस की ओर देखा। वहाँ मुरझाए फूलों और पत्तों का ढेर लगा था। मैं वहाँ जाने लगा कि उसकी आवाज सुनाई दी।

'ठहरिए - मैं आपके साथ आती हूँ, लेकिन अगर आप बच कर भागेंगे तो... यहीं मर जाएँगे।' वह रुकी, मेरी तरफ देखा, 'आप मरना चाहते हैं?'

मैंने जल्दी से सिर हिलाया। वह इतना गर्म और उजला दिन था कि मरने की मेरी कोई इच्छा नहीं थी।

हम फेंस तक गए। मैंने रूमाल निकाला और फूल-पत्तियों को बटोरने लगा। मुक्ति पाने के लिए आदमी क्या कुछ नहीं करता।

वापस लौटते हुए वह चुप रही। मैं कनखियों से उसकी ओर देख लेता था। वह काफी बीमार-सी बच्ची जान पड़ती थी। उन बच्चों की तरह गंभीर, जो हमेशा अकेले में अपने साथ खेलते हैं। जब वह चुप रहती थी, तो होंठ बिचक जाते थे - नीचे का होंठ थोड़ा-सा बाहर निकल आता, जिसके ऊपर दबी हुई नाक बेसहारा-सी दिखाई देती थी। बाल बहुत छोटे थे - और बहुत काले-गोल छल्लों में धुली हुई रुई की तरह बँटे हुए, जिन्हें छूने को अनायास हाथ आगे बढ़ जाता था। लेकिन वह अपनी दूरी में हर तरह की छुअन से परे जान पड़ती थी।

'अब आप इन्हें खाना दे सकते हैं।' उसने कहा। वह पेड़ों के पास आ कर रुक गई थी।

'क्या वे मुझे छोड़ देंगे?' मैं कोई गारंटी, कोई आश्वासन पाना चाहता था।

इस बार वह मुस्कराई - और मैंने पहली बार उसके दाँत देखे - एकदम सफेद और चमकीले - जैसे अक्सर नीग्रो लड़कियों के होते हैं।

मैंने वे पत्तियाँ रूमाल से बाहर निकालीं, चार हिस्सों में बाँटी और बराबर-बराबर से पेड़ों के नीचे डाल दी।

मैं स्वतंत्र हो गया था - कुछ खाली-सा भी।

मैंने जेब से चिट्ठियाँ और अखबार निकाले और उस बेंच पर बैठ गया, जहाँ उसका बैग रखा था। वह काले चमड़े का बैग था, भीतर किताबें ठुँसी थीं, ऊपर की जेब से आधा कुतरा हुआ सेब बाहर झाँक रहा था।

वह ओझल हो गई। मैंने चारों तरफ ध्यान से देखा, तो उसकी फ्रॉक का एक कोना झाड़ियों से बाहर दिखाई दिया। वह एक खरगोश की तरह दुबक कर बैठी थी - मेरे ही जैसे, किसी भूले-भटके यात्री पर झपटने के लिए। किंतु बहुत देर तक पार्क से कोई आदमी नहीं गुजरा। हवा चलती तो पेड़ों के नीचे जमा की हुई पत्तियाँ घूमने लगतीं - एक भँवर की तरह - और वह अपने शिकार को भूल कर उनके पीछे भागने लगती।

कुछ देर बाद वह बेंच के पास आई, एक क्षण मुझे देखा, फिर बस्ते की जेब से सेब निकाला। मैं अखबार पढ़ता रहा और उसके दाँतों के बीच सेब की कुतरन सुनता रहा।

अचानक उसकी नजर मेरी चिट्ठियों पर पड़ी, जो बेंच पर रखी थीं। उसके हिलते हुए जबड़े रुक गए।

'यह आपकी हैं?'

'हाँ।' मैंने उसकी ओर देखा।

'और यह?'

उसने लिफाफे पर लगे टिकट की ओर उँगली उठाई। टिकट पर हाथी की तस्वीर थी, जिसकी सूँड़ ऊपर हवा में उठी थी। वह अपने दाँतों के बीच हँसता-सा दिखाई दे रहा था।

'तुम कभी जू गई हो?' मैंने पूछा।

'एक बार पापा के साथ गई थी। उन्होंने मुझे एक पेनी दी थी और हाथी ने अपनी सूँड़ से उस पेनी को मेरे हाथ से उठाया था।'

'तुम डरी नहीं?'

'नहीं, क्यों?' उसने सेब कुतरते हुए मेरी ओर देखा।

'पापा तुम्हारे साथ यहाँ नहीं आते?'

'एक बार आए थे। तीन बार पकड़े गए।'

वह धीमे से हँसी - जैसे मैं वहाँ न हूँ, जैसे कोई अकेले में हँसता है, जहाँ एक स्मृति पचास तहें खोलती है।

अस्पताल की घड़ी का गजर सुनाई दिया, तो हम दोनों चौंक गए। लड़की ने बेंच से बस्ता उठाया और उन पेड़ों के पास-पास गई, जो चुप खड़े थे। बच्ची हर पेड़ के पास जाती थी, छूती थी, कुछ कहती थी, जिसे सिर्फ पेड़ सुन पाते थे। आखिर में वह मेरे पास आई और मुझसे हाथ मिलाया, जैसे मैं भी उन पेड़ों में से एक हूँ।

उसकी निगाहें पीछे मुड़ गईं। मैंने देखा, कौन है? वह महिला दिखाई दीं। वह नर्सोंवाली सफेद पोशाक हरी घास पर चमक रही थी। बच्ची उन्हें देखते ही भागने लगी। मैंने ध्यान से देखा - यह वही महिला थीं, जिन्हें मैं लायब्रेरी की खिड़की से देखता था। छोटा कद, कंधे पर थैला और बच्ची-जैसे ही काले घुँघराले बाल। वे मुझसे काफी दूर थीं, लेकिन उनकी आवाज सुनाई दे जाती थी - अलग-अलग शब्द नहीं, सिर्फ दो स्वरों की एक आहट। वे घास पर बैठ गई थीं। बच्ची मुझे भूल गई थी।

मैंने जूते पहने। अखबार और चिट्ठियाँ जेब में रख दीं। अभी समय काफी है, मैंने सोचा। एक-दो घंटे लायब्रेरी में बिता सकता हूँ। पार्क के जादू से अलग, अपने अकेले कोने में।

मैं बीच पार्क में चला आया। पेड़ों की फुनगियों पर आग सुलगने लगी थी। समूचा पार्क सोने में गल रहा था। बीच में पत्तों का दरिया था, हवा में हिलता हुआ।

कौन... कौन है? कोई मुझे बुला रहा था और मैं चलता गया, रुका नहीं। कभी-कभी आदमी खुद अपने को बुलाने लगता है, बाहर से भीतर - और भीतर से कुछ भी नहीं होता। लेकिन यह बुलावा और दिनों की तरह नहीं था। यह रुका नहीं, इसलिए अंत में मुझे ही रुकना पड़ा। इस बार कोई शक नहीं हुआ। सचमुच कोई चीख रहा था, 'स्टॉप, स्टॉप...!' मैंने पीछे मुड़ कर देखा, लड़की खड़ी हो कर दोनों हाथ हवा में हिला रही थी।

सच! मैं फिर पकड़ा गया था - दोबारा से। बेवकूफों की तरह मैं उसकी जमीन पर चला आया था, चार पेड़ों से घिरा हुआ। इस बार माँ और बेटी दोनों हँस रही थीं।

वे झूठी गर्मियों के दिन थे। ये दिन ज्यादा देर नहीं टिकेंगे, इसे सब जानते थे। लायब्रेरी उजाड़ रहने लगी। मेरे पड़ोसी, बूढ़े पेंशनयाफ्ता लोग, अब बाहर धूप में बैठने लगे। आकाश इतना नीला दिखाई देता कि लंदन की धुंध भी उसे मैला न कर पाती। उसके नीचे पार्क एक हरे टापू-सा लेटा रहता।

ग्रेता (यह उसका नाम था) हमेशा वहाँ दिखाई देती थी। कभी दिखाई न देती, तो भी बेंच पर उसका बस्ता देख कर पता चल जाता कि वह यहीं कहीं है, किसी कोने में दुबकी है। मैं बचता हुआ आता, पेड़ों से, झाड़ियों से, घास के फूलों से। हर रोज वह कहीं-न-कहीं, एक अदृश्य भयानक फंदा छोड़ जाती और जब पूरी सतर्कता के बावजूद मेरा पाँव उसमें फँस जाता, तो वह बदहवास चीखती हुई मेरे सामने आ खड़ी होती। मैं पकड़ लिया जाता। छोड़ दिया जाता। फिर पकड़ लिया जाता...।

यह खेल नहीं था। वह एक पूरी दुनिया थी। उस दुनिया से मेरा कोई वास्ता नहीं था - हालाँकि मैं कभी-कभी उसमें बुला लिया जाता था। ड्रामे में एक ऐक्स्ट्रा की तरह। मुझे हमेशा तैयार रहना पड़ता था, क्योंकि वह मुझे किसी भी समय बुला सकती थी। एक दोपहर हम दोनों बेंच पर बैठे थे, अचानक वह उठ खड़ी हुई।

'हलो मिसेज टामस...!' उसने मुस्कराते हुए कहा, 'आज आप बहुत दिन बाद दिखाई दीं - यह मेरे इंडियन दोस्त हैं, इनसे मिलिए।'

मैं अवाक उसे देखता रहा। वहाँ कोई न था।

'आप बैठे हैं? इनसे हाथ मिलाइए।' उसने मुझे कुछ झिड़कते हुए कहा।

मैं खड़ा हो गया, खाली हवा से हाथ मिलाया। ग्रेता खिसक कर मेरे पास बैठ गई, ताकि कोने में मिसेज टामस बैठ सकें।

'आप बाजार जा रही थीं?' उसने खाली जगह को देखते हुए कहा, 'मैं आपका थैला देख कर समझ गई। नहीं, माफ कीजिए, मैं आपके साथ नहीं आ सकती। मुझे बहुत काम करना है। इन्हें देखिए (उसने पेड़ों की तरफ इशारा किया), ये सुबह से भूखे हैं, मैंने अभी तक इनके लिए खाना भी नहीं बनाया - आप चाय पिएँगी या कॉफी? ओह - आप घर से पी कर आई हैं। क्या कहा - मैं आपके घर क्यों नहीं आती? आजकल वक्त कहाँ मिलता है! सुबह अस्पताल जाना पड़ता है, दोपहर को बच्चों के साथ - आप तो जानती हैं। मैं इतवार को आऊँगी। आप जा रही हैं...'

उसने खड़े हो कर दोबारा हाथ मिलाया। मिसेज टामस शायद जल्दी में थीं। विदा लेते समय उन्होंने मुझे देखा नहीं। बदले में मैं बेंच पर ही बैठा रहा।

कुछ देर तक हम चुपचाप बैठे रहे। फिर सहसा वह चौंक पड़ी।

'आप कुछ सुन रहे हैं?' उसने मेरी कुहनी को झिंझोड़ा।

'कुछ भी नहीं।' मैंने कहा।

'फोन की घंटी - कितनी देर से बज रही है। जरा देखिए, कौन है?'

मैं उठ कर बेंच के पीछे गया, नीचे घास से एक टूटी टहनी उठाई और जोर से कहा, 'हलो!'

'कौन है?' उसने कुछ अधीरता से पूछा।

'मिसेज टामस।' मैंने कहा।

'ओह - फिर मिसेज टामस!' उसने एक थकी-सी जम्हाई ली, धीमे कदमों से पास आई, मेरे हाथ से टहनी खींच कर कहा, 'हलो, मिसेज टामस - आप बाजार से लौट आईं? क्या-क्या लाईं? मीट-बॉल्स, फिश-फिंगर्स, आलू के चिप्स?' उसकी आँखें

आश्चर्य से फैलती जा रही थीं। वह शायद चुन-चुन कर उन सब चीजों का नाम ले रही थी, जो उसे सबसे अधिक अच्छी लगती थीं।

फिर वह चुप हो गई - जैसे मिसेज टामस ने कोई अप्रत्याशित प्रस्ताव उसके सामने रखा हो। 'ठीक है मिसेज टामस, मैं अभी आती हूँ - नहीं, मुझे देर नहीं लगेगी। मैं अभी बस-स्टेशन की तरफ जा रही हूँ - गुड बाई, मिसेज टामस!'

उसने चमकती आँखों से मेरी ओर देखा।

'मिसेज टामस ने मुझे डिनर पर बुलाया है - आप क्या करेंगे?'

'मैं सोऊँगा।'

'पहले इन्हें कुछ खिला देना... नहीं तो ये रोएँगे।' उसने पेड़ों की ओर इशारा किया, जो ठहरी हवा में निस्पंद खड़े थे।

वह तैयार होने लगी। अपने बिखरे बालों को सँवारा, पाउडर लगाने का बहाना किया - हथेली का शीशा बना कर उसमें झाँका - धूप और पेड़ों की छाया के बीच वह सचमुच सुंदर जान पड़ रही थी।

जाते समय उसने मेरी तरफ हाथ हिलाया। मैं उसे देखता रहा, जब तक वह पेड़ों और झाड़ियों के घने झुरमुट में गायब नहीं हो गई।

ऐसा हर रोज होने लगा। वह मिसेज टामस से मिलने चली जाती और मैं बेंच पर लेटा रहता। मुझे अकेला नहीं लगता था। पार्क की अजीब, अदृश्य आवाजें मुझे हरदम घेरे रहतीं। मैं एक दुनिया से निकल कर दूसरी दुनिया में चला आता। वह पार्क के सुदूर कोनों में भटकती फिरती। मैं लायब्रेरी की किताबों का सिरहाना बना कर बेंच पर लेट जाता। लंदन के बादलों को देखता - वे घूमते रहते और जब कभी कोई सफेद टुकड़ा सूरज पर अटक जाता, तब पार्क में अँधेरा-सा घिर जाता।

ऐसे ही एक दिन जब मैं बेंच पर लेटा था, मुझे अपने नजदीक एक अजीब-सी खड़खड़ाहट सुनाई दी। मुझे लगा, मैं सपने में मिसेज टामस को देख रहा हूँ। वे मेरे पास-बिल्कुल पास - आ कर खड़ी हो गई हैं, मुझे बुला रही हैं।

मैं हड़बड़ा कर उठ बैठा।

सामने बच्ची की माँ खड़ी थीं। उन्होंने ग्रेता का हाथ पकड़ रखा था और कुछ असमंजस में वे मुझे निहार रही थीं।

'माफ कीजिए,' उन्होंने सकुचाते हुए कहा, 'आप सो तो नहीं रहे थे?'

मैं कपड़े झाड़ता हुआ उठ खड़ा हुआ।

'आज आप जल्दी आ गईं?' मैंने कहा। उनकी सफेद पोशाक, काली बेल्ट और बालों पर बँधे स्कार्फ को देख कर मेरी आँखें चुँधिया-सी गईं। लगता था, वे अस्पताल से सीधी यहाँ चली आ रही थीं।

'हाँ, मैं जल्दी आ गई,' वे मुस्कराने लगीं, 'शनिवार को काम ज्यादा नहीं रहता - मैं दोपहर को ही आ जाती हूँ।'

वे वेस्टइंडीज के चौड़े उच्चारण के साथ बोल रही थीं जिसमें हर शब्द का अंतिम हिस्सा गुब्बारे-सा उड़ता दिखाई देता था।

'मैं आपसे कहने आई थी, आज आप हमारे साथ चाय पीने चलिएगा? ...हम लोग पास में ही रहते हैं।'

उनके स्वर में कोई संकोच या दिखावा नहीं था, जैसे वे मुझे मुद्दत से जानती हों!

मैं तैयार हो गया। मैं अरसे से किसी के घर नहीं गया था। अपने बेड-सिटर से लायब्रेरी और पार्क तक परिक्रमा लगाता था। मैं लगभग भूल गया था कि उसके परे एक और दुनिया है - जहाँ ग्रेता रहती होगी, खाती होगी, सोती होगी।

वह आगे-आगे चल रही थी। कभी-कभी पीछे मुड़ कर देख लेती थीं कि कहीं हम बहुत दूर तो नहीं छूट गए। उसे शायद कुछ अनोखा-सा लग रहा था कि मैं उसके घर आ रहा हूँ। अजीब मुझे भी लग रहा था - उसके घर आना नहीं, बल्कि उसकी माँ के साथ चलना। वे उम्र में काफी छोटी जान पड़ती थीं, शायद अपने कद के कारण। मेरे साथ चलते हुए वे कुछ इतनी छोटी दिखाई दे रही थीं कि भ्रम होता था कि मैं किसी दूसरी ग्रेता के साथ चल रहा हूँ।

रास्ते-भर वे चुप रहीं। सिर्फ जब उनका घर सामने आया, तो वे ठिठक गईं।

'आप भी तो कहीं पास रहते हैं?' उन्होंने पूछा।

'ब्राइड स्ट्रीट में,' मैंने कहा, 'ट्यूब स्टेशन के बिल्कुल सामने।'

'आप शायद हाल में ही आए हैं?' उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, 'इस इलाके में बहुत कम इंडियन रहते हैं।'

वे नीचे उतरने लगीं। उनका घर बेसमेंट में था और हमें सीढ़ियाँ उतर कर नीचे जाना पड़ा था। बच्ची दरवाजा खोल कर खड़ी थी। कमरे में दिन के समय भी अँधेरा था। बत्ती जलाई, तो तीन-चार कुर्सियाँ दिखाई दीं। बीच में एक मेज थी। जरूरत से ज्यादा लंबी और नंगी - जैसे उस पर पिंग-पाँग खेली जाती है। दीवार से सटा सोफा था, जिसके सिरहाने एक रजाई लिपटी रखी थी। लगता था, वह कमरा बहुत-से कामों के काम आता था, जिसमें खाना, सोना-और मौका पड़ने पर - अतिथि-सत्कार भी शामिल था।

'आप बैठिए, मैं अभी चाय बना कर लाती हूँ।'

वे पर्दा उठा कर भीतर चली गईं। मैं और ग्रेता कमरे में अकेले बैठे रहे। हम दोनों पार्क के पतझड़ी उजाले में एक-दूसरे को पहचानने लगे थे। पर कमरे के भीतर न कोई मौसम था, न कोई माया। वह अचानक एक बहुत कम उम्रवाली बच्ची बन गई थी, जिसका जादू और आतंक दोनों झर गए थे।

'तुम यहाँ सोती हो?' मैंने सोफे की ओर देखा।

'नहीं, यहाँ नहीं,' उसने सिर हिलाया, 'मेरा कमरा भीतर है - आप देखेंगे?'

किचेन से आगे एक कोठरी थी, जो शायद बहुत पहले गोदाम रहा होगा। वहाँ एक नीली चिक लटक रही थी। उसने चिक उठाई और दबे कदमों से भीतर चली आई।

'धीरे से आइए - वह सो रहा है!'

'कौन?'

'हिश!' उसने अपना हाथ मुँह पर रख दिया।

मैंने सोचा, कोई भीतर है। पर भीतर बिल्कुल सूना था। कमरे की हरी दीवारें थीं, जिन पर जानवरों की तस्वीरें चिपकी थीं। कोने में उसकी खाट थी, जो खटोला-सी दिखाई देती थी। तकिए पर थिगलियों में लिपटा एक भालू लेटा था, गुदड़ी के लाल-जैसा।

'वह सो रहा है।' उसने फुसफुसाते हुए कहा।

'और तुम?' मैंने कहा, 'तुम यहाँ नहीं सोती?'

'यहाँ सोती हूँ। जब पापा यहाँ थे, तो वे दूसरे पलंग पर सोते थे। माँ ने अब उस पलंग को बाहर रखवा दिया है।'

'कहाँ रहते हैं वे?' इस बार मेरा स्वर भी धीमा हो गया, भालू के डर से नहीं, अपने उस डर से जो कई दिनों से मेरे भीतर पल रहा था।

'अपने घर रहते हैं - और कहाँ?'

उसने तनिक विस्मय से मुझे देखा। उसे लगा, मैं पूरी तरह आश्वस्त नहीं हुआ हूँ। वह अपनी मेज के पास गई, जहाँ उसकी स्कूल की किताबें रखी थीं। दराज खोला और उसके भीतर से चिट्ठियों का पुलिंदा बाहर निकाला। पुलिंदे पर रेशम का लाल फीता बँधा था, मानो वह क्रिसमस का कोई उपहार हो। वह उन्हें उठा कर मेरे पास ले आई - सबसे ऊपरवाले लिफाफे पर लगा टिकट दिखाया।

'वे यहाँ रहते हैं।' उसने कहा।

मुझे याद आया, वह मेरी नकल कर रही है - बहुत पहले पार्क में मैंने उसे अपने देश की चिट्ठी दिखाई थी।

बैठक से उसकी माँ हमें बुला रही थीं। आवाज सुनते ही वह कमरे से बाहर चली गई।

मैं एक क्षण वहीं ठिठका रहा। खटोले पर भालू सो रहा था। दीवारों पर जानवरों की आँखें मुझे घूर रही थीं। बिस्तर के पास ही एक छोटी-सी बेसिनी थी, जिस पर उसका टूथ-ब्रश, साबुन और कंघा रखे थे।

बिल्कुल मेरे बेड-सिट की तरह - मैंने सोचा। किंतु मुझसे बहुत अलग। मैं अपना कमरा छोड़ कर कहीं भी जा सकता था, उसका कमरा अपनी चीजों में शाश्वत-सा जान पड़ता था।

मेज पर चिट्ठियों का पुलिंदा पड़ा था, रेशमी डोर में बँधा हुआ, जिसे जल्दी में वह अकेला छोड़ गई थी।

'कमरा देख लिया आपने?' उन्होंने मुस्कराते हुए कहा।

'यहाँ जो भी आता है, सबसे पहले उसे अपना कमरा दिखाती है।' वे कपड़े बदल कर आई थीं। लाल छींट की स्कर्ट और खुला-खुला भूरे रंग का कार्डीगन। कमरे में सस्ती सेंट की गंधें फैली थीं।

'आप चाय नहीं - दावत दे रही हैं।' मैंने मेज पर रखे सामान को देख कर कहा। टोस्ट, जैम, मक्खन, चीज - पता नहीं, इतनी सारी चीजें मैंने पहले कब देखी थीं।

'अस्पताल की कैंटीन से ले आती हूँ - वहाँ सस्ते में मिल जाता है।'

वे परेशान लगती थीं। हँसती थीं, लेकिन परेशानी अपनी जगह कायम रहती थी। पता नहीं, बच्ची कहाँ थी? वे उसे चीखते हुए बुला रही थीं और चाय ठंडी हो रही थी।

वे सिर पकड़ कर बैठी रहीं। फिर याद आया, मैं भी हूँ। 'आप शुरू कीजिए - वह बाग में बैठी होगी।'

'आपका अपना बाग है?' मैंने पूछा।

'बहुत छोटा-सा किचन के पीछे। जब हम यहाँ आए थे, उजाड़ पड़ा था। मेरे पति ने उसे साफ किया। अब तो थोड़ी-बहुत सब्जी भी निकल आती है।'

'आपके पति यहाँ नहीं रहते**?**'

'उन्हें यहाँ काम नहीं मिला - दिन-भर पार्क में घूमते रहते थे। वही आदत ग्रेता को पड़ी है**...**।'

उनके स्वर में हल्की-सी थकान थी। खीज से खाली - लेकिन ऐसी थकान, जो पोली धूल-सी हर चीज पर बैठ जाती है।

'पार्क में तो मैं भी घूमता हूँ।' मैंने उन्हें हल्का करना चाहा। वे हो भी गईं। हँसने लगीं।

'आपकी बात अलग है।' उन्होंने डूबे स्वर में कहा, 'आप अकेले हैं। लेकिन लंदन में अगर परिवार साथ हो, तो बिना नौकरी के नहीं रहा जा सकता।'

वे मेज की चीजें साफ करने लगीं। बर्तनों को जमा करके मैं किचन में ले गया। सिंक के आगे खिड़की थी, जहाँ से उनका बाग दिखाई देता था। बीच में एक वीपिंग-विलो खड़ा था, जिसकी शाखाएँ एक उल्टी छतरी की सलाखों की तरह झूल रही थीं।

पीछे मुड़ा तो वे दिखाई दीं। दरवाजे पर तौलिया ले कर खड़ी थीं।

'क्या देख रहे हैं?'

'आपके बाग को... यह तो कोई बहुत छोटा नहीं है।'

'है नहीं - पर इस पेड़ ने सारी जगह घेर रखी है। मैं इसे कटवाना चाहती थी, लेकिन वह अपनी जिद पर अड़ गई - जिस दिन पेड़ कटना था, वह रात-भर रोती रही।'

वे चुप हो गईं - जैसे उस रात को याद करना अपने में एक रोना हो।

'क्या कहती थी?'

'कहती क्या थी - अपनी जिद पर अड़ी थी। बहुत पहले कभी इसके पापा ने कहा होगा कि पेड़ के नीचे समर-हाउस बनाएँगे - अब आप बताइए, यहाँ खुद रहने को जगह है नहीं, बाग में गुड़ियों का समर-हाउस बनेगा?'

'समर-हाउस?'

'हाँ, समर-हाउस - जहाँ ग्रेता अपने भालू के साथ रहेगी।'

वे हँसने लगीं - एक उदास-सी हँसी जो एक खाली जगह से उठ कर दूसरी खाली जगह पर खत्म हो जाती है - और बीच की जगह को भी खाली छोड़ जाती है।

मेरे जाने का समय हो गया था - लेकिन ग्रेता कहीं दिखाई नहीं दी। हम सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर चले आए। लंदन की मैली धूप पड़ोस की चिमनियों पर रेंग रही थी।

जब विदा लेने के लिए मैंने हाथ आगे बढ़ाया, तो उन्होंने कुछ सकुचाते हुए कहा, 'आप कल खाली हैं?'

'कहिए - मैं तकरीबन हर रोज खाली रहता हूँ।'

'कल इतवार है...' उन्होंने कहा, 'ग्रेता की छुट्टी है, पर मेरी अस्पताल में ड्यूटी है। क्या मैं उसे आपके पास छोड़ सकती हूँ?'

'कितने बजे आना होगा?'

'नहीं, आप आने की तकलीफ न करें। अस्पताल जाते हुए मैं इसे लायब्रेरी के सामने छोड़ दूँगी... शाम को लौटते हुए ले लूँगी।'

मैंने हामी भरी और सड़क पर चला आया। कुछ दूर चल कर जेब से पैसे निकाले और उन्हें गिनने लगा। आज खाने के पैसे बच जाएँगे, यह सोच कर खुशी हुई। मैंने बची हुई रेजगारी को मुट्ठी में दबाया और घर की तरफ चलने लगा।

मैं लायब्रेरी के दरवाजे पर खड़ा था।

उन्हें देर हो गई थी - शायद सर्दी के कारण। धूप कहीं न थी। लंदन की इमारतों पर अवसन्न-सा आलोक फैला था - पीली और जर्द, जिसमें वे और भी दरिद्र और दुखी दिखाई देती थीं।

मुझे उनकी सफेद पोशाक दिखाई दी। दोनों पार्क से गुजरते हुए आ रही थीं। आगे-आगे वे और पीछे भागती हुई ग्रेता। जब उन्होंने मुझे देख लिया तो हवा में हाथ हिलाया, बच्ची को जल्दी से चूमा और तेज कदमों से अस्पताल की तरफ मुड़ गईं।

किंतु बच्ची में कोई जल्दी न थी। वह धीमे कदमों से मेरे पास आई। सर्दी में नाक लाल-सुर्ख हो गई थी। उसने पूरी बाँहोंवाला ब्राउन स्वेटर पहन रखा था - सिर पर वही पुरानी कैप थी, जिसे मैं पार्क में देखा करता था।

वह निढाल-सी खड़ी थी।

'चलोगी?' मैंने उसका हाथ पकड़ा।

उसने चुपचाप सिर हिला दिया। मुझे हल्की-सी निराशा हुई। मैंने सोचा था, वह पूछेगी, कहाँ - और तब मैं उसे आश्चर्य में डाल दूँगा। पर उसने पूछा कुछ भी नहीं और हम सड़क पार करने लगे।

जब हम पार्क को छोड़ कर आगे बढ़े तो एक बार उसने प्रश्न-भरी निगाहों से मेरी ओर देखा - जैसे वह अपने किसी सुरक्षित घेरे से बाहर जा रही हो। पर मैं चुप रहा - और उसने कुछ पूछा नहीं। तब मुझे पहली बार लगा कि जब बच्चे माँ-बाप के साथ नहीं होते तो सब प्रश्नों को पुड़िया बना कर किसी अँधेरे गड्ढे में फेंक देते हैं।

ट्यूब में बैठ कर वह कुछ निश्चिंत नजर आई। उसने मेरा हाथ छोड़ दिया और खिड़की के बाहर देखने लगी।

'क्या अभी से रात हो गई?' उसने पूछा।

'रात कैसी?'

'देखो - बाहर कितना अँधेरा है।'

'हम जमीन के नीचे हैं।' मैंने कहा।

वह कुछ सोचने लगी, फिर धीरे से कहा, 'नीचे रात है, ऊपर दिन।'

हम दोनों हँसने लगे। मैंने पहले कभी ऐसा नहीं सोचा था।

धीरे-धीरे रोशनी नजर आने लगी। ऊपर आकाश का एक टुकड़ा दिखाई दिया - और फिर अथाह सफेदी में डूबा दिन सुरंग के बाहर निकल आया।

ट्यूब-स्टेशन की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए वह रुक गई। मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखा।

'रुक क्यों गईं!'

'मुझे बाथरूम जाना है।'

मुझे दहशत हुई। टॉयलेट नीचे था और वह इस तरह अपने को रोके बहुत दूर तक नहीं जा सकती थी। मैंने उसे गोद में उठा लिया और उल्टे पाँव सीढ़ियों पर भागने लगा। गलियारे के दूसरे सिरे पर टॉयलेट दिखाई दिया - पुरुषों के लिए - मैं जल्दी से उसे भीतर ले गया। दरवाजा बंद करके बाहर आया, तो लगा जैसे वह नहीं, मैं मुक्त हो रहा हूँ।

वह बाहर आई तो परेशान-सी नजर आई। 'अब क्या बात है?'

'चेन बहुत ऊँची है।' उसने कहा।

'तुम ठहरो, मैं खींच आता हूँ।'

उसने मेरा कोट पकड़ लिया। वह खुद खींचना चाहती थी। उसके साथ मैं भीतर गया, उसे दोबारा गोद में उठाया और तब तक उठाता गया, जब तक उसका हाथ चेन तक नहीं पहुँच गया। हम दोनों विस्मय से टॉयलेट में पानी को बहता देखते रहे, जैसे यह चमत्कार जिंदगी में पहली बार देख रहे हों।

हम सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। ऊपर आए तो उसने कस कर मेरा हाथ भींच लिया। ट्रिफाल्गर स्कैयर आगे था, चारों तरफ भीड़, उजाला, शोर। मैं उसे आश्चर्य में डालना चाहता था। किंतु वह डर गई थी। वह इतना डर गई थी कि मेरी इच्छा हुई कि मैं उसे दोबारा नीचे ले जाऊँ - ट्यूब-स्टेशन में, जहाँ जमीन का अपना सुरक्षित अँधेरा था।

लेकिन जल्दी ही डर बह गया - और कुछ देर बाद उसने मेरा हाथ भी छोड़ दिया। वह स्क्वैयर के अनोखे उजाले में खो गई थी। वह उन शेरों के नीचे चली आई थी, जो काले पत्थरों पर अपने पंजे खोल कर भीड़ को निहार रहे थे। बहुत-से बच्चे कबूतरों को दाना डाल रहे थे।

पंखों की छाया एक बादल-सा दिखाई देती थी, जो हवा में कभी इधर जाती थी, कभी उधर-सिर के ऊपर से निकल जाती थी और कानों में सिर्फ एक गर्म, सनसनाती फड़फड़ाहट बाकी रह जाती थी।

वह सुन रही थी। वह मुझे भूल गई थी।

मैं उसकी आँख बचा कर स्क्वैयर के बीच चला आया। वहाँ एक लाल लकड़ी का केबिन था, जहाँ दाने बिकते थे। एक कप दाने के दाम - चार पेंस। मैंने एक कप खरीदा और भीड़ में उसे ढूँढ़ने लगा।

बच्चे बहुत थे - कबूतरों से घिरे हुए। किंतु वह जहाँ थी, वहाँ खड़ी थी। अपनी जगह से एक इंच भी न हिली थी। मैं उसके पीछे गया और दानों का कप उसके आगे कर दिया।

वह मुड़ी और हकबका कर मेरी ओर देखा। बच्चे कृतज्ञ नहीं होते, सिर्फ अपना लेते हैं। एक तीसरी आँख खुल जाती है, जो सब चुप्पियों को पाट देती है। उसने कप को लगभग मेरे हाथों से खींचते हुए कहा, 'क्या वे आएँगे?'

'जरूर आएँगे... पहले तुम्हें एक-एक दाना डालना होगा - उन्हें पास बुलाने के लिए, फिर...'

उसने मेरी बात नहीं सुनी। वह उस तरफ भागती गई, जहाँ इक्के-दुक्के कबूतर भटक रहे थे। शुरू-शुरू में उसने डरते हुए हथेली आगे बढ़ाई। कबूतर उसके पास आते हुए झिझक रहे थे, जैसे उसके डर ने उन्हें भी छू लिया हो। किंतु ज्यादा देर वे अपना लालच नहीं रोक सके। नखरे छोड़ कर पास आए - इधर-उधर देखने का बहाना किया - और फिर खटाखट उसकी हथेली से दाने चुगने लगे। वह अब अपनी फ्रॉक फैला कर बैठ गई थी। एक हाथ में दोना, दूसरे हाथ में दाने। मैं अब उसे देख भी नहीं सकता था। पंखों की सलेटी, फड़फड़ाती छत ने उसे अपने में ढक लिया था।

मैं बेंच पर बैठ गया। फव्वारों को देखने लगा, जिनके छींटे उड़ते हुए घुटनों तक आ जाते थे। बादल इतने नीचे झुक आए थे कि नेल्सन का सिर सिर्फ एक काले धब्बे-सा दिखाई देता था।

दिन बीत रहा था।

कुछ ही देर में मैंने देखा, वह सामने खड़ी है।

'मैं एक कप और लूँगी।' उसने कहा।

'अब नहीं...' मैंने कुछ हिचकिचाते हुए कहा, 'काफी देर हो गई है। अब चाय पिएँगे - और तुम आइसक्रीम लोगी।'

उसने सिर हिलाया।

'मैं एक कप और लूँगी।'

उस स्वर में जिद नहीं थी। कुछ क्षण पहले जो पहचान आई थी, वह मानो मुझसे नहीं, उससे आग्रह कर रही हो।

मैंने उसके हाथ से खाली कप लिया और दुकान की तरफ बढ़ गया। पीछे मुड़ कर देखा। वह मुझे देख रही थी। मैं दुकान के पीछे मुड़ गया। वहाँ भीड़ थी और उसकी आँखें मुझ तक नहीं पहुँच सकती थीं। कोने में सिमट कर मैंने जेब से पैसे निकाले। चाय और आइसक्रीम के पैसे एक तरफ किए, ट्यूब के किराए के पैसे दूसरी तरफ - बाकी सिर्फ दो पेंस बचे थे। मैंने चाय के कुछ पेंस उसमें मिलाए और दुकानदार के आगे लगी क्यू में शामिल हो गया।

इस बार जब मैंने उसे कप दिया, तो उसने मुझे देखा भी नहीं। वह तुरंत भागती हुई उस जगह चली गई, जहाँ सबसे ज्यादा कबूतर इकट्ठा थे। अब उसका हौसला बढ़ गया था। और कबूतर भी उसे पहचानने लगे थे। वे आसपास उड़ते हुए कभी उसके हाथों, उसके कंधों, उसके सिर पर बैठ जाते थे। वह हँसती जा रही थी, पीला चेहरा एक ज्वरग्रस्त खिंचाव में विकृत-सा हो गया था - और हाथ - वे हाथ, जो मुझे हमेशा इतने निरीह जान पड़ते थे - अब एक अजीब बेचैनी में कभी खुलते थे, कभी बंद होते थे, जैसे वे किसी भी क्षण कबूतरों की फड़फड़ाती मांसल धड़कनों को दबोच लेंगे। उसे पता भी न चला, कब दानों की कटोरी खाली हो गई - वह कुछ देर तक हवा में हथेली खोले बैठी रही। सहसा उसे आभास हुआ, कबूतर उसे छोड़ कर दूसरे बच्चों के आसपास मँडराने लगे हैं। वह खड़ी हो गई और बिना कहीं देखे चुपचाप मेरे पास चली आई।

वह एकटक मुझे देख रही थी। मुझे शक हुआ, वह मुझपर शक कर रही है। मैं बेंच से उठ खड़ा हुआ।

'अब चलेंगे।' मैंने कहा।

'मैं एक कप और लूँगी।'

'अब और नहीं - तुम दो ले चुकी हो।' मैंने गुस्से में कहा, 'तुम्हें मालूम है, हमारे पास कितने पैसे बचे हैं?'

'सिर्फ एक और - उसके बाद हम लौट जाएँगे।'

लोग हमें देखने लगे थे। मैं बहस कर रहा था - दानों की एक कटोरी के लिए। मैंने उसे उठा कर बेंच पर बिठा दिया, 'ग्रेता, तुम बहुत जिद्दी हो। अब तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा।'

उसने ठंडी आँखों से मुझे देखा।

'आप बुरे आदमी हैं। मैं आपके साथ कभी नहीं खेलूँगी।' मुझे लगा, जैसे उसने मेरी तुलना किसी अदृश्य व्यक्ति से की हो। मैं खाली-सा बैठा रहा। कभी-कभी ऐसा होता है कि अपने लिए कोई उम्मीद नहीं रहती। सिर्फ घोर हैरानी होने लगती है, अपने होने पर, अपने होने पर ही हैरानी होने लगती है। फिर मुझे वह आवाज सुनाई दी, जो आज भी मुझे अकेले में सुनाई दे जाती है... और मुँह मोड़ लेता हूँ।

वह रो रही थी। हाथ में दानों का खाली कप था, और उसकी कैप खिसक कर माथे पर चली आई थी। वह चुप्पी का रोना था। अलग-अलग साँसों के बीच बिंधा हुआ। मुझसे वह नहीं सहा गया। मैंने उसके हाथ से कप लिया और लाइन में जा कर खड़ा हो गया। इस बार पैसों को गिनना भी याद नहीं आया। मैं सिर्फ उसका रोना सुन रहा था, हालाँकि वह मुझसे बहुत दूर थी, और बीच में कबूतरों की फड़फड़ाहट और बच्चों की चीखों के कारण कुछ भी सुनाई नहीं देता था। पर इन सबके परे मेरे भीतर का सन्नाटा था, जिसके बीच उसकी रुँधी साँसें थीं - और वे मैं अंतहीन दूरी से सुन सकता था।

किंतु इस बार पहले जैसा नहीं हुआ। बहुत देर तक कोई कबूतर उसके पास नहीं आया। उसकी अपनी घबराहट के कारण या घिरते अँधेरे के कारण - वे पास तक आते थे, लेकिन उसकी खुली हथेली की अवहेलना करके दूसरे बच्चों के पास चले जाते थे। हताश हो कर उसने दानों की कटोरी जमीन पर रख दी और स्वयं मेरे पास बेंच पर आ कर बैठ गई।

उसके जाते ही कबूतरों का जमघट कटोरी के इर्द-गिर्द जमा होने लगा। कुछ देर बाद हमने देखा, दानों की कटोरी औंधी पड़ी है - और उसमें एक भी दाना नहीं है।

'अब चलोगी?' मैंने कहा।

वह तुरंत बेंच से उठ खड़ी हुई, जैसे वह इतनी देर से सिर्फ इसकी ही प्रतीक्षा कर रही हो। उसकी आँखें चमक रही थीं - एक भीगी हुई चमक - जो आँसुओं के बाद चली जाती है।

उन दिनों ट्रिफाल्गर स्कैयर के सामने लायंस का रेस्तराँ होता था। गंदा और सस्ता दोनों ही। सड़क पार करके हम वहीं चले आए।

इस बीच मैंने जेब में हाथ डाल कर पैसों को गिन लिया था - मैंने उसके लिए दो टोस्ट मँगवाए, अपने लिए चाय। आइसक्रीम को भुला देना ही बेहतर था।

वह पहली बार किसी रेस्तराँ में आई थी। गहरी उत्सुकता से चारों तरफ देख रही थी। मुझे लगा, कुछ देर पहले का संताप घुलने लगा है। हम करीब-करीब दोबारा एक-दूसरे के करीब आ गए थे। लेकिन पहले जैसे नहीं - कबूतरों की छाया अब भी हम दोनों के बीच फड़फड़ा रही थी।

'मैं क्या बहुत बुरा आदमी हूँ?' मैंने पूछा।

उसने आँखें उठाईं, एक क्षण मुझे देखती रही, फिर बहुत अधीर स्वर में कहा, 'मैंने आपको नहीं कहा था।'

'मुझे नहीं कहा था?' मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखा, 'फिर किसको कहा था?'

'मि. टामस को - वे बुरे आदमी हैं। एक दिन जब मैं उनके घर गई, वे डाँट रहे थे और मिसेज टामस बेचारी रो रही थीं।'

'ओह!' मैंने कहा।

'आप समझे - मैंने आपको कहा था?'

वह हँसने लगी, जैसे मैंने सचमुच बड़ी मूर्खता की भूल की है - और उसकी हँसी देख कर, न जाने क्यों, मेरा दिल बैठने लगा।

'हम यहाँ फिर कभी आएँगे?' उसने कहा।

'गर्मियों में,' मैंने कहा, 'गर्मियों में टेम्स पर चलेंगे, वह यहाँ से बहुत पास है।'

'क्या वहाँ कबूतर होंगे?' उसने पूछा।

मुझे बुरा लगा, जैसे कोई लड़की अपने प्रेमी की चर्चा बार-बार छेड़ दे। किंतु मैं उसे दोबारा निराश नहीं करना चाहता था। गर्मियाँ काफी दूर थीं, बीच में पतझड़ और बर्फ के दिन आएँगे - तब तक मेरा झूठ भी पिघल जाएगा, मैंने सोचा।

हम बाहर आए, तो पीला-सा अँधेरा घिर आया था। हालाँकि दोपहर अभी बाकी थी। उसने खोई हुई आँखों से स्कैयर की तरफ देखा, जहाँ कबूतर अब भी उड़ रहे थे। मेरी जेब में अब उतने ही पैसे थे, जिनसे ट्यूब का किराया दिया जा सके। इस बार उसने कोई आग्रह नहीं किया। बच्चे एक सीमा के बाद, बड़ों की गरीबी न सही, मजबूरी सूँघ लेते हैं।

मैंने सोचा था, ट्रेन में बैठेंगे, तो मैं उससे समर-हाउस के बारे में पूछूँगा - उस विलो के बारे में भी, जो अकेला उसके बाग में खड़ा था। मैं उसे दोबारा उसकी अपनी दुनिया में लाना चाहता था - जहाँ पहली बार हम दोनों एक-दूसरे से मिले थे। पर ऐसा हुआ नहीं। सीट पर बैठते ही उसकी आँखें मुँदने लगीं। ट्रिफाल्गर स्कैयर से इसलिंग्टन तक का काफी लंबा फासला था। कुछ देर बाद उसने मेरे कंधों पर अपना सिर टिका लिया और सोने लगी।

इस बीच मैंने एक-आध बार उसके चेहरे को देखा था - मुझे हैरानी हुई कि सोते हुए वह हू-ब-हू वैसी ही लग रही है, जैसी पहली बार मैंने उसे देखा था पार्क में पेड़ों के बीच-तल्लीन और साबुत। कबूतरों के लिए जो भटकाव आया था, वह अब कहीं न था। आँसू कब के सूख चले थे। नींद में वह उतनी ही मुकम्मिल जान पड़ती थी, जितनी झाड़ियों के बीच और तब मुझे अजीब-सा विचार आया। पार्क में उसने कई बार मुझे पकड़ा था, किंतु उसके सोते हुए तल्लीन चेहरे को देख कर मुझे लगा कि वह हमेशा से पकड़ी हुई लड़की है, जबकि मेरे जैसे लोग सिर्फ कभी-कभी पकड़ में आते हैं और उसे इसका कोई पता नहीं है और यह एक तरह का वरदान है, क्योंकि दूसरों को हमेशा छूटने का, मुक्त होने का भ्रम रहता है, जबकि बच्ची को इस तरह की कोई आशा नहीं थी। तब पहली बार मैंने उसे छूने का साहस किया। मैं धीरे-धीरे उसके गालों को छूने लगा, जो आँसुओं के बाद गर्म हो आए थे, कुछ वैसे ही, जैसे बारिश के बाद घास की पत्तियाँ हो जाती हैं।

वह जगी नहीं। ट्यूब-स्टेशन आने तक आराम से सोती रही।

उस रात बारिश शुरू हुई, सो हफ्ते-भर चलती रही। झूठी गर्मियों के दिन खत्म हो गए। सारे शहर पर पीली धुंध की परतें जमी रहतीं। सड़क पर चलते हुए कुछ भी दिखाई न देता-न पेड़, न लैंप पोस्ट, न दूसरे आदमी।

मुझे वे दिन याद हैं, क्योंकि उन्हीं दिनों मुझे काम मिला था। लंदन में वह मेरी पहली नौकरी थी। काम ज्यादा था लेकिन मुश्किल नहीं। एक पब में काउंटर के पीछे सात घंटे खड़ा रहना पड़ता था। बियर और लिकर के गिलास धोने पड़ते थे। ग्यारह बजे घंटी बजानी पड़ती थी और पियक्कड़ लोगों को बाहर खदेड़ना पड़ता था। कुछ दिन तक मैं कहीं बाहर न जा सका। घर लौटता और बिस्तर पकड़ लेता, मानो पिछले महीनों की नींद कोई पुराना बदला निकाल रही हो। नींद खुलती, तो बारिश दिखाई देती, जो घड़ी की टिक-टिक की तरह बराबर चलती रहती। कभी-कभी भ्रम होता कि मैं मर गया हूँ - और अपनी कब्र की दूसरी तरफ से - बारिश की टप-टप सुन रहा हूँ।

लेकिन एक दिन आकाश दिखाई दिया - पूरा नहीं - सिर्फ एक नीली डूबी-सी फाँक - और उसे देख कर मुझे अकस्मात पार्क के दिन याद हो आए, यहूदी रेस्तराँ की बिल्ली और बाजार जाती हुई मिसेज टामस। वह मेरी छुट्टी का दिन था। उस दिन मैंने अपने सबसे बढ़िया कपड़े पहने और कमरे से बाहर निकल आया।

लायब्रेरी खुली थी। सब पुराने चेहरे वहाँ दिखाई दिए। पार्क खाली पड़ा था। पेड़ों पर पिछले दिनों की बारिश चमक रही थी। वे सिकुड़े-से दिखाई देते थे, जैसे आनेवाली सर्दियों की अफवाह उन्हें छू गई हो।

मैं दोपहर तक प्रतीक्षा करता रहा। ग्रेता कहीं दिखाई न दी - न बेंच पर, न पेड़ों के पीछे। धीरे-धीरे पार्क का पीला, पतझड़ी आलोक मंद पड़ने लगा। पाँच बजे अस्पताल का गजर सुनाई दिया और मेरी आँखें अनायास फाटक की ओर उठ गईं।

कुछ देर तक कोई दिखाई नहीं दिया। फाटक के ऊपर लोहे का हैंडिल शाम की आखिरी धूप में चमक रहा था। उसके पीछे अस्पताल की लाल ईंटोंवाली इमारत दिखाई दे रही थी। मुझे मालूम था, उन्हें घर जाने के लिए पार्क के बीच से निकलना होगा, किंतु फिर भी मैं अनिश्चित निगाहों से कभी फाटक को देखता था, कभी सड़क को। यह खयाल भी आता था कि शायद आज उनकी ड्यूटी अस्पताल में न हो और वे दोनों घर में ही बैठी हों।

सड़क की बत्तियाँ जलने लगीं। मुझे अजीब-सी घबराहट हुई, जैसे प्रतीक्षा का अंत आ पहुँचा है और मैं उसे टालता जा रहा हूँ। मैं बेंच से उठ खड़ा हुआ-खड़े हो कर प्रतीक्षा

करना ज्यादा आसान जान पड़ा। किंतु तभी मुझे फाटक के निकट सरसराहट सुनाई दी। उनके चेहरे को बाद में देखा, उनकी सफेद पोशाक पहले दिखाई दी। वे तेज कदमों से पार्क के बीच पगडंडी पर चल रही थीं। उन्होंने मुझे नहीं देखा था। यदि वे मेरी दिशा में आ रही होतीं, तो भी शायद धुँधलके में मुझे नहीं पहचान पातीं।

मैं भागता हुआ उनके पीछे चला आया।

'मिसेज पार्कर!' पहली बार मैंने उन्हें उनके नाम से बुलाया था।

वे ठहर गईं और भौंचक-सी मेरी ओर देखने लगीं। 'आप यहाँ कैसे?' अब भी वे अपने को नहीं सँभाल पाई थीं।

'मैं यहाँ दोपहर से बैठा हूँ।' मैंने मुस्कराते हुए कहा।

वे हकबकाई-सी मुझे देख रही थीं। उन्होंने मुझे पहचान लिया था, लेकिन जैसे उस पहचान का मतलब नहीं टोह पा रही थीं। मैं कुछ असमंजस में पड़ गया और सहज स्वर में पूछा, 'आज आप इतनी देर से लौट रही हैं? पाँच का गजर तो कब का बज चुका है?'

'पाँच का गजर?' उन्होंने विस्मय से पूछा।

'आप हमेशा पाँच बजे लौटती थीं।' मैंने कहा।

'ओह!' उन्हें याद आया, जैसे मैं किसी प्रागैतिहासिक घटना का उल्लेख कर रहा हूँ।

'आप लंदन में ही थे?' उन्होंने पूछा।

'मुझे काम मिल गया, इतने दिनों से इसलिए नहीं आ सका। ग्रेता कैसी है?'

वे हिचकिचाईं - एक छोटे क्षण की हिचकिचाहट, जो कुछ भी मानी नहीं रखती - लेकिन शाम के धुँधलके में मुझे वह अपशकुन-सा जान पड़ी।

'मैं आपको बताना चाहती थी, लेकिन मुझे आपका घर नहीं मालूम था...'

'वह ठीक है?'

'हाँ, ठीक है,' उन्होंने जल्दी में कहा, 'लेकिन वह अब यहाँ नहीं है। कुछ दिन पहले उसके पिता आए थे, वे उसे अपने साथ ले गए...'

मैं उन्हें देखता रहा। मेरे भीतर जो कुछ था, वह ठहर गया - मैं उसके भीतर था, ठहराव के, और वहाँ से दुनिया बिल्कुल बाहर दिखाई देती थी। मैंने कभी इतनी सफाई से बाहर को नहीं देखा था।

'कब की बात है?'

'जिस दिन आप उसके साथ ट्रिफाल्गर स्कैयर गए थे - उसके दूसरे दिन ही वे आए थे... आप जानते हैं, उन्हें वहाँ काम मिल गया है।'

'और आप?' मैंने कहा, 'आप यहाँ अकेली रहेंगी?'

'मैंने अभी कुछ सोचा नहीं है।' उन्होंने धीरे से सिर उठाया, आवाज हल्के से काँपती थी, और एक क्षण के लिए मुझे उनके चेहरे पर बच्ची दिखाई दी, ऊपर उठा हुआ होंठ और भीगी आँखें, हवा में उड़ते हुए कबूतरों को निहारती हुई।

'आप कभी घर जरूर आइएगा...' उन्होंने विदा माँगी और मैंने हाथ आगे बढ़ा दिया। मैं बहुत दूर तक उन्हें देखता रहा। फिर काफी देर तक बेंच पर बैठा रहा। मुझे कहीं नहीं जाना था, न ही प्रतीक्षा करनी थी। धीरे-धीरे पेड़ों के ऊपर तारे निकलने लगे। मैंने पहली बार लंदन के आकाश में इतने तारे देखे थे, साफ और चमकीले, जैसे बारिश ने उन्हें भी धो डाला हो।

'इट इज टाइम डियर!'

पार्क के चौकीदार ने दूर से ही आवाज लगाई। वह गेट की चाभियाँ खनखनाता हुआ पार्क का चक्कर लगा रहा था। टॉर्च की रोशनी में वह हर बेंच, झाड़ी और पेड़ के नीचे देख लेता था कि कहीं कोई छूट तो नहीं गया - कोई खोया हुआ बच्चा, कोई शराबी, कोई घरेलू बिल्ली।

वहाँ कोई नहीं था। कोई भी चीज नहीं छूटी थी। मैं उठ खड़ा हुआ और गेट की तरफ चलने लगा। सहसा हवा उठी थी। हल्का-सा झोंका अँधेरे में चला आया और पेड़ सरसराने लगे। और तब मुझे धीमी-सी आवाज सुनाई दी, एक असीम उत्साह में लिपटी हुई - 'स्टॉप... स्टॉप...' मेरे पाँव बीच पार्क में ठिठक गए। चारों ओर देखा। कोई न था। न कोई आवाज, न खटका - सिर्फ पेड़ों की शाखाएँ हवा में डोल रही थीं। उस समय एक पगली उत्कट, नंगी-सी, आकांक्षा मेरे भीतर जागने लगी कि यहीं बैठ जाऊँ। इन पेड़ों के बीच जहाँ मैं पहली बार पकड़ा गया था। मेरी अब और आगे जाने की

इच्छा नहीं थी। मैं इस बार अंतिम और अनिवार्य रूप में पकड़ लिया जाना चाहता था...

'इट इज क्लोजिंग टाइम!' चौकीदार ने इस बार बहुत पास आ कर कहा, मेरी तरफ जिज्ञासा से देखा कि क्या मैं वही आदमी हूँ, जो अभी कुछ देर पहले बेंच पर बैठा था।

इस बार मैं नहीं मुड़ा। पार्क से बाहर आ कर ही साँस ली। मेरा गला सूख गया था और देह खोखली-सी जान पड़ती थी। पार्क में सामने पब की लालटेन झूलती दिखाई दी। मैंने जेब से पर्स निकाला, पैसे गिनने के लिए। पुरानी गरीबी की यह आदत अब भी बची थी। मैंने हैरानी से देखा कि मेरे पास पूरे दो पौंड हैं - और तब मुझे याद आया कि मैं उन्हें कबूतरों के दानों के लिए लाया था।